

सांझी चित्रकला का सांस्कृतिक एवं प्रतीकात्मक अध्ययन: पद्धतियों और लोकपरंपराओं के संदर्भ में

श्रीमती आंचल सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग
इस्माईल नेशनल महिला (पी.जी.)
कॉलेज, मेरठ,
(संबद्ध चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)

प्रो. (डॉ.) ज्योत्सना
विभागाध्यक्षा
चित्रकला विभाग
कनोहर लाल स्नातकोत्तर
महिला महाविद्यालय, मेरठ
(संबद्ध चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)

Reference to this paper should
be made as follows:

Received: 29-05-26
Approved: 29-06-26

श्रीमती आंचल सिंह
प्रो (डॉ) ज्योत्सना

सांझी चित्रकला का सांस्कृतिक
एवं प्रतीकात्मक अध्ययन: पद्धतियों
और लोकपरंपराओं के संदर्भ में

Vol. XVII, Sp. Issue July.2026
Article No.10, Pg. 060-066

Similarity Check: 05%

Online available at
<https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-klsmm-mrt-july-2026>

DOI: <https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI07.010>

सारांश

सांझी चित्रकला भारतीय लोकजीवन में विकसित एक ऐसी परंपरा है, जिसमें धार्मिक विश्वास, सामाजिक संबंध और सांस्कृतिक अनुभव एक साथ अभिव्यक्त होते हैं। यह केवल चित्र निर्माण की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि एक सामूहिक गतिविधि है, जो लोगों के बीच भावनात्मक जुड़ाव और परंपरागत ज्ञान को जीवित रखती है। मानव की स्वाभाविक सौंदर्यबोध की प्रवृत्ति ने समय के साथ अनेक कलारूपों को जन्म दिया, जिनमें लोककला विशेष रूप से जनजीवन के अनुभवों को व्यक्त करने का माध्यम बनी। लोककला का स्वरूप सदैव सामूहिक रहा है। यह किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि पूरे समुदाय की अभिव्यक्ति होती है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से आगे बढ़ती है। इसी परंपरा में सांझी कला का विशेष स्थान है, जो उत्तर भारत विशेषकर राजस्थान क्षेत्र में प्रचलित है। यह कला संध्या समय से जुड़ी हुई है और धार्मिक आस्था के साथ-साथ सामुदायिक सहभागिता का प्रतीक भी है। सांझी चित्रों की संरचना में विभिन्न प्रकार की चित्रण विधियों और प्रतीकों का संयोजन देखने को मिलता है। इनमें सरल रेखाएँ, सजावटी रूप, ज्यामितीय आकृतियाँ तथा दैनिक जीवन से जुड़े चित्र शामिल होते हैं। सूर्य, चंद्रमा, वृक्ष, पक्षी और अन्य प्रतीकात्मक रूपों के माध्यम से जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया जाता है। यह कला केवल सौंदर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि सामाजिक समरसता, पारिवारिक संबंधों और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। आधुनिक समय में इसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं, फिर भी इसकी मूल भावना आज भी कायम है।

मुख्य शब्द: सांझी चित्रकला, लोकसांस्कृतिक, प्रतीकात्मकता, चित्रण पद्धतियाँ, धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक विरासत

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

मनुष्य के भीतर सौंदर्य को अनुभव करने और उसे अभिव्यक्त करने की जो स्वाभाविक क्षमता होती है, वही कला के विकास का आधार बनती है। प्रारंभ से ही मनुष्य ने अपने आसपास के वातावरण, प्रकृति और जीवन की विविध स्थितियों में सौंदर्य की अनुभूति की है और उसे विभिन्न रूपों में व्यक्त करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि समय के साथ साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला जैसे अनेक कलारूप विकसित हुए, जो मानव सभ्यता की प्रगति और उसकी सांस्कृतिक चेतना को दर्शाते हैं। भारतीय कला परंपरा का मूल स्रोत लोकजीवन रहा है। आज जिन परिष्कृत और विकसित कलाओं को हम देखते हैं, उनकी जड़ें कहीं न कहीं लोककलाओं में निहित हैं। यदि प्राचीन चित्रकला, मंदिरों की भित्ति सज्जा या गुफा चित्रों का अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि उनमें लोकभावनाओं और जनजीवन की झलक प्रमुख रूप से उपस्थित रही है। लोककला का उद्भव सदैव समाज के भीतर से होता है और यह समाज की भावनाओं, विश्वासों तथा अनुभवों को सरल और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त करती है।

‘लोक’ शब्द का अर्थ केवल ग्रामीण जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें संपूर्ण जनसमुदाय सम्मिलित होता है, जो अपनी परंपराओं, अनुभवों और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर जीवन जीता है। लोककला उसी जीवन का प्रतिबिंब होती है, जिसमें धार्मिक आस्था, सामाजिक मान्यताएँ और पारंपरिक व्यवहार सहज रूप से जुड़े होते हैं। लोकसंस्कृति का स्वरूप अत्यंत व्यापक होता है, जिसमें लोकसाहित्य, लोकगीत, नृत्य, नाट्य तथा चित्रकला जैसी विभिन्न अभिव्यक्तियाँ सम्मिलित होती हैं। ये सभी मिलकर समाज की सामूहिक चेतना को आकार देते हैं। लोकजीवन से जुड़े तत्व जैसे लोकमानस, लोकमूल्य, लोकधर्म और लोकाचार मिलकर एक सशक्त सांस्कृतिक ढांचे का निर्माण करते हैं, जिसे हम लोकसंस्कृति के रूप में पहचानते हैं।⁴

लोककला की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह समय के साथ परिवर्तित होते हुए भी अपनी मूल पहचान को बनाए रखती है। यह अतीत की परंपराओं को संजोते हुए वर्तमान के अनुभवों को भी अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार लोककला अतीत और वर्तमान के बीच एक सेतु का कार्य करती है, जो सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में सहायक होती है।

मूल विषय: उद्देश्य

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य साँझी चित्रकला के माध्यम से भारतीय लोकजीवन में निहित सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक तत्वों को समझना और उनका विश्लेषण करना है। इस अध्ययन के अंतर्गत साँझी कला की उत्पत्ति, स्वरूप और इसके क्रमिक विकास की प्रक्रिया का अवलोकन करते हुए यह जानने का प्रयास किया गया है कि यह परंपरा किस प्रकार लोकसमाज में अपनी निरंतरता बनाए रखे हुए है। शोध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य साँझी चित्रों में प्रयुक्त विभिन्न चित्रण विधियों का अध्ययन करना भी है। इसके अंतर्गत रेखा प्रधान शैली, अलंकरणात्मक रूप, ज्यामितीय संरचना तथा आकृतिपरक अभिव्यक्ति जैसी तकनीकों का विश्लेषण करते हुए उनकी विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है। साथ ही यह समझने का प्रयास किया गया है कि ये पद्धतियाँ किस प्रकार इस कला को विशिष्टता प्रदान करती हैं।⁵

इसके अतिरिक्त, इस अध्ययन का एक अन्य प्रमुख पक्ष साँझी चित्रों में प्रयुक्त प्रतीकों और उनके निहित अर्थों की व्याख्या करना है। सूर्य, चंद्रमा, वृक्ष, पशु-पक्षी तथा अन्य पारंपरिक चिह्नों के माध्यम से व्यक्त सांस्कृतिक और धार्मिक संकेतों को समझने का प्रयास किया गया है, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि ये प्रतीक लोकमानस की भावनाओं और विश्वासों को किस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं। इस शोध का उद्देश्य यह भी है कि साँझी चित्रकला के सामाजिक महत्व को रेखांकित किया जाए। यह कला किस प्रकार सामूहिक सहभागिता को प्रोत्साहित करती है, सामाजिक एकता को मजबूत बनाती है तथा पारिवारिक और सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ करती है, इसका अध्ययन भी इस शोध में सम्मिलित है।⁶

अंततः, आधुनिक समय में साँझी कला में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करते हुए इसके संरक्षण और संवर्धन की आवश्यकता पर बल देना भी इस शोध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है, ताकि यह परंपरा भविष्य में भी जीवित और प्रासंगिक बनी रह सके।

लोककला का महत्व

लोकसंस्कृति के अंतर्गत लोकमूल्य, परंपराएँ और विश्वास जितने महत्वपूर्ण होते हैं, उतना ही महत्वपूर्ण स्थान लोककला और लोकसाहित्य का भी होता है। लोककला को एक ऐसी निरंतर प्रवाहित होने वाली धारा के रूप में समझा जा सकता है, जो समय के साथ अपने स्वरूप में परिवर्तन तो करती है, किंतु अपनी मूल आत्मा को बनाए रखती है। यह समाज के जीवन से गहराई से जुड़ी होती है और हर युग में अपनी उपयोगिता सिद्ध करती है।

भारतीय समाज में धर्म का प्रभाव अत्यंत व्यापक रहा है, जिसका स्पष्ट प्रतिबिंब लोकजीवन और लोककलाओं में दिखाई देता है। विभिन्न त्योहारों, अनुष्ठानों और पारंपरिक अवसरों पर बनाए जाने वाले मांगलिक चिह्न, अलंकरण और सजावट के रूप लोककला के जीवंत उदाहरण हैं। ये केवल सजावटी रूप नहीं होते, बल्कि इनके माध्यम से धार्मिक आस्था, शुभता और सांस्कृतिक पहचान की अभिव्यक्ति होती है।⁷

भारतीय कला परंपरा में कलाकारों ने अपने परिवेश, मान्यताओं और धार्मिक कथाओं को प्रमुखता दी है। उन्होंने अपने समय के सामाजिक जीवन और उसकी संरचना को कला के माध्यम से अभिव्यक्त किया। यही कारण है कि प्राचीन से लेकर मध्यकालीन चित्रकला परंपराओं जैसे राजपूत, मुगल और पहाड़ी चित्रकला में भी लोकजीवन और धार्मिक भावनाओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

लोककला का संबंध केवल विशेष अवसरों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा होती है। यह रहन-सहन, परंपराओं और सामाजिक व्यवहार में स्वाभाविक रूप से समाहित रहती है। इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसका संरक्षण मुख्यतः मौखिक परंपरा के माध्यम से हुआ है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक यह ज्ञान अनुभव और अभ्यास के जरिए हस्तांतरित होता रहा है।⁸

लोकपरंपराएँ अत्यंत प्राचीन होने के बावजूद समय के साथ बदलती परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालती रहती हैं। लोककला जहाँ अतीत की स्मृतियों और अनुभवों को संजोकर रखती है, वहीं वर्तमान की भावनाओं और जीवन की गतिशीलता को भी अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार यह अतीत और वर्तमान के बीच एक सशक्त कड़ी के रूप में कार्य करती है और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

साँझी कला

मानव जीवन में कला का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। प्रारंभिक काल से ही मनुष्य ने अपने परिवेश, विशेषकर प्रकृति और सामाजिक जीवन से प्रेरणा लेकर विभिन्न कलात्मक अभिव्यक्तियों का निर्माण किया है। भारतीय लोकचित्रण परंपराओं में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जहाँ साधारण जीवन के अनुभव, धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक भावनाएँ कलात्मक रूप में व्यक्त होती हैं। इसी परंपरा के अंतर्गत साँझी चित्रकला का विशेष स्थान है, जो लोकजीवन और आस्था का सजीव उदाहरण प्रस्तुत करती है।

साँझी कला मुख्यतः उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों, विशेषकर राजस्थान, ब्रज और आसपास के प्रदेशों में प्रचलित एक पारंपरिक लोकचित्रण विधा है। यह कला विशेष रूप से महिलाओं और बालिकाओं द्वारा सामूहिक रूप से की जाती है, जिससे इसमें सामाजिक सहभागिता का तत्व स्वाभाविक रूप से जुड़ जाता है। यह केवल एक कलात्मक क्रिया नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक अनुष्ठान के रूप में भी प्रतिष्ठित है, जिसका संबंध धार्मिक आस्था और पारंपरिक मान्यताओं से होता है।⁹

साँझी चित्रकला का निर्माण प्रायः विशेष अवसरों, जैसे पितृपक्ष या अन्य धार्मिक पर्वों के दौरान किया जाता है। इसमें दीवारों या आंगन की सतह पर गोबर, मिट्टी और प्राकृतिक रंगों के माध्यम से विभिन्न आकृतियाँ निर्मित की

जाती हैं। इन आकृतियों में सूर्य, चंद्रमा, वृक्ष, पशु-पक्षी, पुष्प तथा अन्य शुभ प्रतीक शामिल होते हैं, जो जीवन में सुख-समृद्धि, शांति और सकारात्मक ऊर्जा की कामना का संकेत देते हैं। इस प्रकार यह कला केवल सजावट तक सीमित नहीं रहती, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाती है।

साँझी का संबंध संध्या समय से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति में संध्या को शांति, संतुलन और आध्यात्मिकता का प्रतीक माना जाता है। दिनभर की गतिविधियों के पश्चात यह समय मानसिक स्थिरता और आत्मिक शांति प्रदान करता है। इसी समय साँझी का निर्माण और सज्जा की जाती है, जिससे यह कला एक विशेष भावनात्मक और आध्यात्मिक महत्व प्राप्त करती है।¹⁰

इस कला में सामूहिकता का विशेष महत्व होता है। बालिकाएँ और महिलाएँ मिलकर न केवल चित्र बनाती हैं, बल्कि इसके साथ पारंपरिक गीतों का गायन भी करती हैं। इस प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक संबंधों में मधुरता और सहयोग की भावना विकसित होती है। साँझी इस प्रकार एक सामाजिक मंच का कार्य करती है, जहाँ कला के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों का आदान-प्रदान होता है।

साँझी के नामकरण और उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ परंपराओं में इसे देवी स्वरूप माना गया है, जबकि ब्रज क्षेत्र में इसका संबंध राधा-कृष्ण की लीलाओं से जोड़ा जाता है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार "संध्या" को भी एक दिव्य शक्ति के रूप में देखा गया है, जिससे इस कला का आध्यात्मिक पक्ष और सुदृढ़ होता है।

समय के साथ साँझी कला के स्वरूप में परिवर्तन भी देखने को मिलता है। पारंपरिक रूप में जहाँ प्राकृतिक साधनों का प्रयोग प्रमुख था, वहीं आधुनिक समय में नए माध्यमों और तकनीकों का भी उपयोग होने लगा है। इसके बावजूद इस कला की मूल भावना आस्था, सामूहिकता और सौंदर्य बोध आज भी बनी हुई है, जो इसे अन्य लोक कलाओं से विशिष्ट बनाती है।

साँझी चित्रों में विभिन्न पद्धतियों का समन्वय

साँझी चित्रकला की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से एक है इसमें प्रयुक्त विभिन्न चित्रण पद्धतियों का संतुलित और प्रभावी समन्वय। यह समन्वय केवल कलात्मक विविधता को नहीं दर्शाता, बल्कि लोकजीवन, धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक परंपराओं की गहन अभिव्यक्ति भी प्रस्तुत करता है। साँझी चित्र प्रायः घर के प्रवेश द्वार या आंगन के निकट बनाए जाते हैं, जहाँ पहले गोबर या गेरु से सतह को तैयार कर एक आधार निर्मित किया जाता है। इसी आधार पर विभिन्न आकृतियों का निर्माण किया जाता है।

इन चित्रों में रेखा प्रधान पद्धति का विशेष महत्व होता है। आकृतियों को स्पष्ट और सशक्त बनाने के लिए सरल, मोटी और सीधी रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। यह शैली न केवल चित्रों को सहज बनाती है, बल्कि लोककला की सादगी और प्रभावशीलता को भी उजागर करती है। चूँकि यह कला प्राकृतिक माध्यमों से बनाई जाती है, इसलिए इसमें अत्यधिक जटिलता की अपेक्षा सरलता और स्पष्टता अधिक दिखाई देती है।¹¹

अलंकरणात्मक पद्धति के अंतर्गत चित्रों को फूलों, पत्तियों और अन्य प्राकृतिक तत्वों के माध्यम से सजाया जाता है। यह सजावट केवल सौंदर्य वृद्धि के लिए नहीं होती, बल्कि इसमें रंगों और रूपों के माध्यम से भावनाओं और सांस्कृतिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति भी निहित होती है। इस प्रकार अलंकरणात्मकता इस कला को जीवंत और आकर्षक बनाती है।

ज्यामितीय पद्धति भी साँझी चित्रों का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसमें वृत्त, त्रिभुज, वर्ग, बिंदु तथा स्वास्तिक जैसे आकारों का प्रयोग किया जाता है। ये आकृतियाँ केवल सजावटी तत्व नहीं होतीं, बल्कि इनके पीछे सांकेतिक और दार्शनिक अर्थ भी निहित रहते हैं। कई बार जटिल भावों और विचारों को इन्हीं सरल ज्यामितीय रूपों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है।

आकृतिपरक पद्धति के अंतर्गत दैनिक जीवन से संबंधित वस्तुओं और जीव-जंतुओं का चित्रण किया जाता है। जैसे पंखा, वृक्ष, पक्षी, चंद्रमा, सूर्य आदि। ये आकृतियाँ लोकजीवन के अनुभवों से सीधे जुड़ी होती हैं और इस कला को अधिक यथार्थपरक बनाती हैं। इसके माध्यम से कलाकार अपने परिवेश और अनुभवों को सहज रूप में अभिव्यक्त करता है।

इसके अतिरिक्त क्षेपांकन या थापांकन पद्धति का भी उपयोग किया जाता है, जिसमें हाथों और उंगलियों की सहायता से आकृतियों को उभारा जाता है। यह विधि इस कला की सहजता, स्वाभाविकता और लोकस्वरूप को स्पष्ट करती है। टुपुक पद्धति में उंगलियों के पोरों से बिंदुओं का अंकन किया जाता है, जो विशेष रूप से धार्मिक और अनुष्ठानिक संदर्भों से जुड़ा होता है।¹²

लेपन पद्धति इस प्रक्रिया का प्रारंभिक चरण होती है, जिसमें चित्र बनाने से पहले सतह को तैयार किया जाता है। गेरू, मिट्टी या गोबर का लेप चित्रों को एक आधार प्रदान करता है, जिससे वे अधिक स्पष्ट और स्थायी बनते हैं। यह पद्धति न केवल तकनीकी दृष्टि से आवश्यक है, बल्कि इसका सांस्कृतिक महत्व भी है।

इस प्रकार साँझी चित्रकला में विभिन्न पद्धतियों का समन्वय केवल तकनीकी विविधता का परिचायक नहीं है, बल्कि यह लोकजीवन की रचनात्मकता, सामूहिकता और सांस्कृतिक निरंतरता को भी सशक्त रूप से अभिव्यक्त करता है। इन पद्धतियों के माध्यम से यह कला परंपरा और नवाचार के बीच संतुलन स्थापित करती है।

साँझी चित्रों में प्रतीकों का संयोजन

साँझी चित्रकला में प्रतीकों का उपयोग इसकी आत्मा के समान है, जिसके माध्यम से लोकजीवन, धार्मिक आस्थाओं और सांस्कृतिक परंपराओं को गहराई से अभिव्यक्त किया जाता है। यह कला केवल दृश्य रूप में सुंदरता प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि इसके भीतर निहित प्रतीकात्मकता लोकमानस के विचारों, भावनाओं और विश्वासों को भी स्पष्ट रूप से सामने लाती है। साँझी चित्रों में प्रयुक्त प्रत्येक आकृति और चिन्ह किसी न किसी सांकेतिक अर्थ को वहन करता है, जो इस कला को विशेष बनाती है।

इन चित्रों में सूर्य और चंद्रमा का अंकन अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। सूर्य ऊर्जा, जीवन शक्ति और सक्रियता का प्रतीक होता है, जबकि चंद्रमा शीतलता, संतुलन और शांति का प्रतिनिधित्व करता है। इन दोनों का संयुक्त चित्रण जीवन में संतुलन और सामंजस्य की आवश्यकता को दर्शाता है। कई स्थानों पर इन्हें भाई-बहन के रूप में भी देखा जाता है, जो प्रकृति के द्वैत स्वरूप को प्रकट करता है।¹³

पंचतत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का संकेत भी साँझी चित्रों में विभिन्न रूपों में मिलता है। ये तत्व सृष्टि के मूल आधार माने जाते हैं और मानव जीवन के अस्तित्व से सीधे जुड़े होते हैं। इसी प्रकार स्वास्तिक, अष्टदल पुष्प, केला वृक्ष, हाथी, घोड़ा और रथ जैसे प्रतीक शुभता, समृद्धि, धार्मिक आस्था और सामाजिक प्रतिष्ठा के द्योतक होते हैं।

पारिवारिक और सामाजिक संबंधों को भी साँझी चित्रों में प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, सास-बहू का चित्रण पारिवारिक संतुलन और संबंधों की मधुरता को दर्शाता है। वांदरवाल, जनेऊ और नगाड़ा जैसे प्रतीक सामाजिक एकता, पवित्रता और उत्सवधर्मिता का संकेत देते हैं। इस प्रकार साँझी कला केवल धार्मिक भावनाओं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को भी अपने भीतर समाहित करती है।

प्रकृति से जुड़े वृक्ष, पौधे, पशु-पक्षी और अन्य जीव भी इन चित्रों का अभिन्न अंग होते हैं। ये न केवल पर्यावरण के प्रति मानव के संबंध को दर्शाते हैं, बल्कि जीवन की पारस्परिकता और सहअस्तित्व की भावना को भी अभिव्यक्त करते हैं। कृषि प्रधान समाजों में खेत, फसल और औजारों से जुड़े प्रतीकों का प्रयोग भी देखने को मिलता है, जो स्थानीय जीवनशैली और आर्थिक गतिविधियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।¹⁴

रंगों का प्रयोग भी साँझी चित्रों में अत्यंत अर्थपूर्ण होता है। प्रत्येक रंग अपने साथ एक विशेष भाव या अर्थ लेकर आता है जैसे श्वेत रंग पवित्रता का, लाल ऊर्जा और शक्ति का, पीला प्रसन्नता और ज्ञान का, हरा जीवन और

संतुलन का, तथा नीला शांति और विस्तार का प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार रंगों और प्रतीकों का संयोजन मिलकर एक व्यापक सांस्कृतिक भाषा का निर्माण करता है।

मानव आकृतियों और अन्य रूपों के माध्यम से भी कलाकार अपने अनुभवों और भावनाओं को व्यक्त करता है। सरल रेखाओं और सीमित साधनों के बावजूद, इन चित्रों में गहरी संवेदनाएँ और अर्थ निहित होते हैं। यही कारण है कि साँझी चित्रकला आम जन के लिए भी सहज रूप से समझने योग्य होती है।

इस प्रकार साँझी चित्रों में प्रतीकों का संयोजन केवल सजावटी उद्देश्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह लोकजीवन, सांस्कृतिक मान्यताओं, धार्मिक विश्वासों और मानवीय संबंधों की गहन अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है।

निष्कर्ष

साँझी चित्रकला भारतीय लोकसंस्कृति की एक सशक्त और जीवंत परंपरा के रूप में सामने आती है, जिसमें कला, आस्था और सामूहिकता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यह केवल एक चित्रण विधा नहीं है, बल्कि लोकजीवन की गहरी सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक संबंधों और धार्मिक विश्वासों का सजीव प्रतिबिंब भी है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि साँझी कला ने न केवल परंपराओं को संरक्षित किया है, बल्कि उन्हें समय के साथ निरंतर विकसित भी किया है।

साँझी चित्रों में प्रयुक्त विभिन्न चित्रण पद्धतियाँ जैसे रेखात्मक, अलंकरणात्मक, ज्यामितीय और आकृतिपरक शैली इस कला को एक विशिष्ट पहचान प्रदान करती हैं। इन पद्धतियों के माध्यम से साधारण साधनों का उपयोग करते हुए भी गहन भावों और विचारों को प्रभावी ढंग से व्यक्त किया जाता है। इसके साथ ही, चित्रों में प्रयुक्त प्रतीकों और रंगों का चयन भी अत्यंत अर्थपूर्ण होता है, जो लोकजीवन की मान्यताओं, आस्थाओं और सांस्कृतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करता है।

यह भी स्पष्ट होता है कि साँझी चित्रकला केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक एकता, पारिवारिक संबंधों की सुदृढ़ता और सामूहिक सहभागिता को भी प्रोत्साहित करती है। यह कला समुदाय के लोगों को एक साथ जोड़ने का कार्य करती है और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आधुनिक समय में भले ही इस कला के स्वरूप में कुछ परिवर्तन आए हों, जैसे कि नए साधनों और तकनीकों का प्रयोग, फिर भी इसकी मूल भावना, आस्था, परंपरा और सामूहिकता आज भी यथावत बनी हुई है। यह परिवर्तन इस कला के विकास का संकेत है, न कि इसके मूल स्वरूप के ह्रास का।¹⁵

अंततः यह कहा जा सकता है कि साँझी चित्रकला भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का एक अमूल्य अंग है, जिसे संरक्षित और प्रोत्साहित किया जाना अत्यंत आवश्यक है। यदि इस परंपरा को समुचित संरक्षण और प्रोत्साहन प्राप्त हो, तो यह न केवल वर्तमान समाज को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़े रखेगी, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक महत्वपूर्ण प्रेरणा स्रोत बनी रहेगी।

संदर्भ

1. कपिला वात्स्यायन, भारतीय लोककला, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1996।
2. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला की विरासत, लखनऊ: हिंदी समिति, 1983।
3. कपिला वात्स्यायन, भारतीय लोककला, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1996।
4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पटना: लोकभारती प्रकाशन, 1956।
5. नंदलाल बोस, कला और संस्कृति, शांतिनिकेतन: विष्वभारती प्रकाशन, 1968।
6. श्यामाचरण दुबे, भारतीय समाज और संस्कृति, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1990।

7. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और कला, नई दिल्ली: सरस्वती सदन, 1972।
8. कपिला वात्स्यायन, भारतीय लोककला, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1996।
9. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला की विरासत, लखनऊ: हिंदी समिति, 1983।
10. कपिला वात्स्यायन, भारतीय लोककला, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1996।
11. नंदलाल बोस, कला और संस्कृति, शांतिनिकेतन: विश्वभारती प्रकाशन, 1968।
12. कपिला वात्स्यायन, भारतीय लोककला, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1996।
13. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला की विरासत, लखनऊ: हिंदी समिति, 1983।
14. कपिला वात्स्यायन, भारतीय लोककला, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1996।
15. कपिला वात्स्यायन, भारतीय लोककला, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1996।